अप्रेल १९९५ हिंदी पत्रिका में प्रकाशित

समाधि कथा

मन किसी भी आलंबन पर टिक जायेगा तो ध्यानस्थ हो ही जायेगा, एकाग्रहो ही जायेगा, अचंचल हो ही जायेगा परंतु चित्त की एकाग्रता मात्र ही सम्यक समाधि नहीं है, उत्तम समाधि नहीं है। सम्यक समाधि के लिए चित्त का कुशल होना आवश्यक है, निष्पाप होना आवश्यक है। कुशल चित्त की एकाग्रता का नाम ही समाधि है – **'कुसलचित्तेकग्गता समाधि** ।

चित्त का समाधान ही तो समाधि है। समाधान माने समता में आधान, समता में स्थापित। विषय-आलंबन चित्त को समता में स्थापित नहीं कर सकता।वह तो चित्त के संतुलन को बिगाड़ेगा ही। इसलिए कुशल चित्त की एकाग्रता को ही समाधान मानना चाहिए, सही समाधि मानना चाहिए।

रागमय चित्त कुशल नहीं है, द्वेषमय चित्त कुशल नहीं है, मोहमय चित्त कुशलनहीं है। जहां राग, द्वेष अथवा मोह का आलंबन लेकर चित्त को एकाग्र किया जायेगा, वहां एकाग्रता तो आ जायेगी, परंतु समाधि नहीं आयेगी, समाधान नहीं आयेगा। ऐसी एकाग्रता सम्यक नहीं है, शुद्ध नहीं है। उस एकाग्रता में हमारा कल्याण निहित नहीं है। राग, द्वेष और मोह पर आलंबित एकाग्रता अकुशल चित्त की तल्लीनता है, वह कल्याणकारी कैसे हो सकती है?

चूहे की बिल पर अपना सारा ध्यान लगाए हुए बिल्ली पूर्णतया एकाग्रचित्त हो जाती है, अपने आलंबन पर ध्यानस्थ हो जाती है। मछली की खोज में तालाब के किनारे एक टांग पर खड़ा हुआ बगुला पानी की ओर ध्यान लगाए पूर्णतया एकाग्रचित्त हो जाता है। उसे और किसी बात की सुध-बुध नहीं रहती। यह चूहे और मछली के प्रति राग से लिप्त हुए मन का एकाग्रहोना है, जो कि सम्यक समाधि नहीं ही है। ऐसी कोई भी समाधि सम्यक नहीं, शुद्ध नहीं।

इसी प्रकार अपने दुश्मन की ताक में छिपकर बैठा हुआ सैनिक दुश्मन की खाई पर ध्यान लगाए हुए पूर्णतया एकाग्रचित्त है। जैसे ही दुश्मन का सिर खाई से ऊपर उठे, वह उसे गोली मार दे। इसी प्रकार किसी हिंस्र पशु की ताक में पूरा ध्यान लगाए हुए एक शिकारी अपनी दूनली बंदूक सँभाले बैठा है। उसका चित्त पूर्णतया एकाग्र है। जैसे ही शिकार दिखा, कि गोली दागी। इस प्रकार द्वेषमयी हिंसा से दूषित चित्त एकाग्र तो है, परंतु वह कुशल चित्त नहीं है। अतः ऐसे चित्त की एकाग्रता सम्यक समाधि नहीं, शुद्ध समाधि नहीं।

किसी मादक पदार्थ का सेवन कर गहरे नशे में डूबा हुआ व्यक्ति उस नशे में ही तल्लीन हो गया है, चित्त की एकाग्रता प्राप्त कर ली है। वह प्रगाढ़ निद्रा में सोए हुए के समान प्रसुप्त है। उसे बाहर-भीतर का कोई होश नहीं। इसी प्रकार वह व्यक्ति एल एस डी जैसे रसायन का प्रयोग करके किसी मरीचिका या विपल्लस के दर्शन करता है और उसमें पूर्णतया तल्लीन हो जाता है। इन दोनों ही अवस्थाओं में वह चित्त की समता खोता है, संतुलन नष्ट करता है। चित्त की विषमता पर आधारित मोह-विमूढ़ित एकाग्रता चित्त का समाधान नहीं है, सम्यक समाधि नहीं है, शुद्ध समाधि नहीं है।

शुद्ध समाधि के लिए किसी प्रकार का भावावेशमय आलंबन भी उपयुक्त नहीं। इससे चित्त की शुद्ध समता नष्ट होगी, उसका संतुलन बिगड़ेगा, चित्त रागजन्य आसक्तियों में डूबेगा, भावुकता में तल्लीन होगा। एकाग्रता तो आयेगी, पर शुद्धता दूर रहेगी।

चित्त की एकाग्रता के लिए आलंबन ऐसा होना चाहिए जो हमें न प्रिय लगने वाला हो, न अप्रिय। जिसके प्रति हमारे मन में न राग जागे और न द्वेष तथा साथ ही ऐसा भी हो जो हमें किसी प्रकार की मोह-निद्रा में डुबाने से बचाए, आत्म-सम्मोहन और पर द्वारा सम्मोहन किए जाने से बचाए, प्रसुप्ति-कारक ध्यानों से बचाए, चित्त को सतत जागरूक रख सकने में सहायक हो।

बाह्य जगत के स्थूल इंद्रिय सुख तो हमें खूब तल्लीनता दिलाते ही हैं। परंतु आध्यात्म के नाम पर चलने वाले सूक्ष्म इंद्रिय सुख भी तल्लीनता दिलाते है। परंतु यह तल्लीनता बांधने वाली ही होती है, मुक्त करने वाली नहीं। अतीन्द्रिय सुख के नाम पर प्राप्त हुई सभी ध्यान-समाधियां बांधने वाली ही होती हैं। आंख बंद रखने पर भी किसी प्रिय मनोरम रूप, रंग, आकार, प्रकाश आदि का दीखना और इसमें चित्त का एकाग्र होना, किसी श्रुति-मधुर शब्द, नाद आदि में चित्त का एकाग्र होना, किसी घ्राण-मधुर गंध, सौरभ के रसास्वादन में चित्त का एकाग्र होना, किसी काया-स्पर्शजन्य सुखद-पुलक-सिहरन में चित्त का एकाग्रहोना – दिव्य अनुभूतियों के नाम पर सूक्ष्म स्तर का राग-रंजन ही है, मोह-बंधन ही है। मुक्ति की ओर ले जाने वाली सम्यक समाधि नहीं। सम्यक समाधि के लिए शुद्ध आलंबन के आधार पर चित्त-एकाग्रता का अभ्यास करने वाले किसी साधक को भी इस प्रकार की अतींद्रिय अनुभूतियां हो जानी स्वाभाविक ही है। परंतु इन्हें पथ पर आने वाले मील के पत्थरों की तरह त्याग कर आगे बढ़ना होगा। कहीं इन्हीं को आलंबन मानकर रुक गए तो फिर राग-रंजन में उलझ जायेंगे। चित्त-विमुक्ति की अंतिम स्थिति तक पहुँच नहीं पायेंगे। अतः सतर्क रहना होगा कि किसी भी स्तर पर कोई भी ऐसा आलंबन न पकड़ बैठें जो कि हमारे पैरों की बेड़ी बन जाय, राह-रोधक दीवार बन जाय।

शुद्ध समाधि के लिए उपयुक्त आलंबन खोजते हुए हमें यह बात भी ध्यान में रखनी होगी कि कहीं वह आलंबन साधक को किसी संप्रदाय-विशेष के दायरे में बंदी तो नहीं बनाने लगा, कहीं वह आलंबन किसी संप्रदाय-विशेष का कोई रूपमय, रंगमय, शब्दमय प्रतीक-विशेष तो नहीं है, जिसे कि ग्रहण करने में अन्य लोगों को कठिनाई हो, हिचक हो। यह जो शील, समाधि, प्रज्ञा और विमुक्ति का मार्ग है, यह तो सर्वथा सार्वजनीन है, सार्वकालिक है सार्वदेशिक है। अतः इस मार्ग पर चलते हुए चित्त की एकाग्रता के लिए जो भी आलंबन चुना गया, वह भी सार्वजनीन ही हो, सार्वकालिक ही हो सार्वदेशिक ही हो। सर्वजन सुलभ हो, सर्वजन ग्रहणीय हो।

उपरोक्त अनिवार्यताओं की पूर्ति करने वाले अनेक आलंबन लिए जा सकते हैं। हमने अपने ही आश्वास-प्रश्वास को आलंबन के

रूप में चुना है। आश्वास-प्रश्वास भी बिल्कुल शुद्ध। शुद्ध इस माने में कि इसके साथ कोई शब्द नहीं जुड़े, कोई नाम नहीं जुड़े, कोई जाप नहीं जुड़े, कोई रूप, कोई आकार नहीं जुड़े। केवल मात्र श्वास के आगमन-निगमन पर सतत जागरूकता का अभ्यास। और श्वास भी नैसर्गिक श्वास, स्वाभाविक श्वास। लंबा है तो लंबा, छोटा है तो छोटा, गहरा है तो गहरा, उथला है तो उथला, स्थूल है तो स्थूल, सूक्ष्म है तो सूक्ष्म। नैसर्गिक श्वास को आलंबन बनाते हुए यह बात समझ लेनी होगी कि हम श्वास की कसरत नहीं कर रहे हैं। अगर कोई कसरत है भी तो वह मन की ही है। श्वास तो केवल मात्र आलंबन है। अतः आलंबन जितना स्वाभाविक होगा, उतना ही अच्छा। उसमें की गई छेड़-छाड़ कृत्रिमता पैदा करेगी जो कि नैसर्गिक सत्य दर्शन में बाधा पैदा करेगी। हम निसर्ग से अभिमुख न हो कर पराङ्मुख हो जायेंगे, विमुख हो जायेंगे।

आखिर इस चित्त की एकाग्रता का अभ्यास किसलिए कर रहे हैं? सहज इसलिए कि एकाग्र हुआ चित्त इतना सूक्ष्म और तीक्ष्ण हो जाय कि अंतिम परमार्थ सत्य को जिन आवरणों ने ढक रखा है, उनको बींध सके, चीर सके और आध्यात्म को निरावरण करके प्रज्ञाचक्षु द्वारा आत्म-साक्षात्कार कर सकने में, सत्य का साक्षात्कार कर सकने में सहायक सिद्ध हो सके। ऐसी अवस्था में आलंबन को जितना कम कृत्रिम बनायेंगे और उसे जितना अधिक नैसर्गिक बने रहने देंगे, उतना ही अंधी गलियों में भटकने से बचेंगे, ऋजु राजपथ पर आरूढ़ रहेंगे।

नैसर्गिक आश्वास-प्रश्वास का आलंबन हमने इसलिए भी अपनाया कि हमारी श्वास की गति का मन के विकारों से गहरा नैसर्गिक संबंध है। हम देखते हैं कि जब हमारा मन किन्ही दूषित विकारों से विकृत हो उठता है, क्रोध से, भय से, वासना से, ईर्ष्या से, अथवा अन्य किसी भी दूषित विकार से यह आक्रांत हो उठता है तो उस समय हमारे श्वास की गति स्वभावतः तीव्र और स्थूल हो जाती है। जैसे जैसे मन पर से ये विकार दूर होते जाते है, वैसे वैसे श्वास की गति मंथर और सूक्ष्म होने लगती है। समाधि के पश्चात हमें प्रज्ञा के क्षेत्र में उतरते हुए अपने ही मनोविकारों बंधनों से मुक्त होना होगा। ऐसी अवस्था में नैसर्गिक श्वास के इस यथाभूत आवागमन का आलंबन अत्यंत उपादेय है। साधना के अगले चरण में यह हमारा सहायक ही होगा।

स्थूल श्वास का निरीक्षण करते-करते हम देखेंगे कि जैसे-जैसे चित्त एकाग्र हुआ, वैसे वैसे उसकी नैसर्गिक सूक्ष्मता में भी अभिवृद्धि होने लगी। कभी-कभी तो श्वास सूक्ष्म बाल की तरह क्षीणकाय हो जायेगा और जैसे बाहर निकलेगा वैसे ही भीतर की ओर मुड़ जायेगा। कभी-कभी स्वतः कुंभक की स्थिति तक पहुँच जायेगा। अतः स्पष्ट है कि हमारा यह आलंबन स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर ले जाने वाला है। आगे का जो अज्ञात, अनदेखा क्षेत्र हमें देखना है, वह इस स्थिति से भी अधिक सूक्ष्म है, इस कारण से भी श्वासोश्वास का आलंबन सही आलंबन है, सार्थक आलंबन है। भीतर ही भीतर जो अनंत उर्मियों का सागर लहरा रहा है, भीतर ही भीतर जो आंतरिक संवेदनाओं की सरिता प्रवाहित हो रही है, भीतर ही भीतर शरीर के अणु-अणु में जो असंख्य स्पंदनों का निरंतर नर्तन हो रहा है, हमें उसका दर्शन करना है। अपने सतत प्रवाहमान स्वरूप का दर्शन करना है। परंतु यह सब कुछ तो अत्यंत सूक्ष्म अवस्था में चल रहा है। यहां तक पहुँचने के लिए पहले अपने गतिमान श्वास के इस स्थूल परंतु अविराम प्रवाह का निरीक्षण आरंभ करना होगा।

जो कुछ भीतर हो रहा है, वह अनायास हो रहा है। शरीर और मन का यह स्वतः संचालित अविरल प्रवाह है। अंतर्जगत की सृष्टि-प्रलय वाली इस अनायास गतिमान स्थिति का निरीक्षण कर सकने के लिए एक ऐसा आलंबन चाहिए जो कि सायास और अनायास दोनों प्रकार से गतिमान होता हो ताकि उसकी सायास गति को देख समझ कर तुरंत उसकी अनायास गति के निरीक्षण का अभ्यास आरंभ कर दे। और यही सांस ही शरीर की एक ऐसी गति है, जिसका संचालन तीव्र या मंद, सायास सप्रायास भी किया जा सकता है और जो कि अनायास अप्रयत्न भी गतिमान है ही। सायास से अनायास तक पहुँचने के लिए, ज्ञात से अज्ञात तक पहुँचने के लिए, नदी के जाने-पहचाने इस पार से, अनजाने-अनदेखे उस पार तक पहुँचने के लिए हमारा श्वास ही एक पुल का काम कर सकता है। इसलिए भी इसका आलंबन उपादेय है।

शील, समाधि, प्रज्ञा और विमुक्ति का यह मार्ग जिसका कि हमने अभ्यास आरंभ किया है, हमें साधना-क्षेत्र की उन गहराइयों तक पहुँचाता है, जहां कि हम सहजभाव से परमार्थ सत्य का साक्षात्कार कर सकेंगे। इसके लिए हमें इस क्षण के यथाभूत सांदृष्टिक सत्य के निरीक्षण से अभ्यास आरंभ करना होगा क्योंकि अंतिम परमार्थ सत्य इस क्षण का सत्य है, बीते हुए क्षणों का नहीं, आने वाले क्षणों का नहीं। बीते हुए क्षणों की तो केवल याद मात्र हो सकती है, आने वाले क्षणों की केवल कामना, कल्पना मात्र हो सकती है। साक्षात्कार तो वर्तमान क्षण का ही हो सकता है, अतीत के क्षणों का नहीं, अनागत के क्षणों का नहीं। अतः परम सत्य के साक्षात्कार के लिए वर्तमान क्षण का जो स्थूल सांदृष्टिक सत्य है, उसी का सावधानीपूर्वक निरीक्षण करते-करते सूक्ष्म सत्यों का अनावरण होगा और सूक्ष्मतम स्थिति के भी परे इस क्षण के परम सत्य का साक्षात्कार हो सकेगा। इसके लिए नन्हें से नन्हें आगत क्षण में जी सकने का अभ्यास ही हमारी सारी साधना का ऋजु राजपथ है। इस क्षण में जीने का अभ्यास करने के लिए इस क्षण होने वाली शरीर की इस स्थूल घटना के प्रति याने आने वाली सांस की अथवा जाने वाली सांस की जानकारी के प्रति जागरूकता बनाए रखना सीखें। ऐसा अभ्यास करते हुए मन पर अतीत की कोई कटु-मधुर यादें बादलों की तरह छाने न पाएं। इसी प्रकार अनागत की कोई कटु-मधुर आशंका या कामना छाने न पाए। शुद्ध सांस की जानकारी, यथाभूत सांस के आवागमन की ही जानकारी मात्र बनी रहे। अतीत या अनागत की कटु-मधुर यादें आशंकाएं, कामनाएं, राग पैदा करती हैं, द्वेष पैदा करती हैं, क्योंकि वे प्रिय होती हैं अथवा अप्रिय होती हैं। जैसे-जैसे भूत-भविष्य से संबंधित इन राग-द्वेषमयी यादों और कल्पनाओं से मुक्त होकर चित्त वर्तमान की इस सांस लेने या छोड़ने वाली घटना पर स्थित होता है, वैसे-वैसे राग-द्वेष से छुटकारा पाता है। और जागरूक है इसलिए मोह से

छुटकारा पाता है। सांस की गति का निरीक्षण करने में हमारे मन में उसके प्रति न कोई प्रिय भाव जागता है, न अप्रिय। न उसके प्रति आकर्षण होता है, न विकर्षण। न राग होता है, न द्वेष।

शरीर की इस नैसर्गिक घटना को महज एक तमाशबीन की तरह देखना सीखते हैं। भूत और भविष्य के बंधनों से मुक्त होकर, राग और द्वेष की जकड़न से बाहर निकलकर, इस क्षण में जीने का प्रथम प्रयास आरंभ करते हैं। डगमग कदमों पर चलना सीखने वाले शिशु का सा यह प्रयास और इस दिशा में किया गया निरंतर अभ्यास हमें एक दिन सुदृढ़, सबल और अडिग कदमों से अपनी यात्रा पूरी कर सकने योग्य बनाता है।

बिना सम्यक समाधि पुष्ट हुए हम इस क्षण की गहराइयों में उतर नहीं सकते। हम प्रज्ञा के क्षेत्र में पदार्पण कर नहीं सकते। समाधि को सम्यकतया पुष्ट करने के लिए ही चित्त को इस क्षण का प्रत्यक्ष, यथार्थ, सांदृष्टिक, कल्पना-विहीन, निर्दोष आलंबन दें, जो कि इस सांस के आवागमन की जानकारी का आलंबन है। इसी के सहारे इस क्षण में जीना सीखते हुए राग-विहीन, द्वेष-विहीन, मोह-विहीन कुशल चित्त की एकाग्रता को पुष्ट करें। काया और वाणी के दुष्चरितों से बच सकने की क्षमता पुष्ट करें। प्रज्ञा में पुष्ट होकर दूषित चित्त-विकारों का उन्मूलन करते हुए मानसिक दुष्कर्मों से विरत रह सकने की क्षमता को पुष्ट करें।

इस प्रकार उपलब्ध हुई शुद्ध समाधि मंगल-प्रदायिनी है। आओ, श्वास के आवागमन के प्रति सजगता का अभ्यास करते हुए समाधि को पुष्ट करें! समाधि के पुष्ट होने से शील भी पुष्ट होगा तथा शील और समाधि के पुष्ट हो जाने से प्रज्ञा भी पुष्ट हो सकेगी। शील, समाधि, प्रज्ञा की पुष्टि में ही तो विमुक्ति है। विकारों से विमुक्ति। दुखों से विमुक्ति। अविद्या-अज्ञान से विमुक्ति।

सचमुच समाधि का पथ मंगल का पथ है। कल्याण का पथ है। शांति-सुख का पथ है। विमुक्ति का पथ है।

कल्याण मित्र,
स. ना. गो.